ISSN: 2456–4397 RNI No.UPBIL/2016/68067 Vol-5* Issue-12* March-2021
Anthology : The Research

सामाजिक–आर्थिक न्याय के संदर्भ में गांधी और अम्बेडकर का दृष्टिकोण

Views of Gandhi and Ambedkar in The Context of Socio-Economic Justice

Paper Submission: 05/03/2021, Date of Acceptance: 23/03/2021, Date of Publication: 25/03/2021

संदीप सिंह चौहान
विभागाध्यक्ष,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय महाविद्यालय,
बून्दी, राजस्थान, भारत

सारांश

पारिभाषिक शब्दावली से परे सामाजिक–आर्थिक न्याय का निहितार्थ है– एक ऐसा तानाबाना, एक ऐसा जीवन–दर्शन, जिससे समाज में समता भी हो, ममता भी हो। जिस समाज में न तनाव हो, न अभाव, न वैभव और बेबसी के बीच का टकराव। ऐसी सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था में यदि व्यक्ति को कुछ हासिल हो तो उसकी योग्यता, क्षमता, मेहनत और आवश्यकता के आधार पर, न कि उसके जन्म, वंश, स्थान और विशेषाधिकार के आधार पर। सामाजिक–आर्थिक न्याय की अवधारणा एक ऐसे जीवन–दर्शन की मांग करती है जिसमें व्यक्तिगत हित का सामूहिक हित के साथ समुचित सामंजस्य हो और व्यक्ति के स्वार्थ का प्रकटीकरण परमार्थ में हो।

Beyond the definitional terminology, the implication of socio-economic justice is - such a fabric, such a philosophy of life, that there is equality in the society, there is also love. A society in which there is no tension, no deprivation, no conflict between splendor and helplessness. In such a socio-economic system, if a person achieves something, it is on the basis of his ability, ability, hard work and need, and not on the basis of his birth, lineage, place and privilege. The concept of socio-economic justice demands a philosophy of life in which individual interest is in proper harmony with the collective interest and the individual's self-interest is manifested in charity.

मुख्य शब्द : योग्यता, क्षमता, मेहनत, सामाजिक–आर्थिक दृष्टिकोण।
Ability, Ability, Hard Work, Socio-Economic Outlook

प्रस्तावना

यह नितान्त हास्यास्पद है कि सामाजिक–आर्थिक न्याय की अवधारणा से ओतप्रोत 'वसुधैव कुटुम्बकम्' और 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः' जैसे मानवीय एवं आदर्शवादी मूल्यों के उद्घोषक देश, भारत और उसके समाज का विशाल भाग सदियों तक अमानवीय यातनाओं, वर्णगत और जातिगत ऊँच–नीच, जातीय अहंकार और सामाजिक–आर्थिक निर्योग्यताओं के पाश में जकड़ा रहा। धर्मशास्त्रों और सामाजिक–धार्मिक मान्यताओं के आधार पर अमानवीय मूल्यों को धर्मसम्मत एवं विधिसम्मत ठहराया जाता रहा। मानवीय मूल्यों और लोक कल्याण के विश्वव्यापी प्रचार–प्रसार के पक्षधर देश में सामाजिक–आर्थिक न्याय की अवधारणा के सर्वथा प्रतिकूल ऐसे अमानवीय मूल्यों का निरन्तर अस्तित्व में रहना भारतीय सामाजिक–आर्थिक व्यवस्था की विसंगतियों को उजागर करता है।

यद्यपि यह सत्य है कि आदिकाल से ही मनुश्य की गरिमा को आहत करने वाली अमानवीय व्यवस्थायें भारतीय समाज में निरन्तर अस्तित्व में रही हैं, तथापि यह भी सत्य है कि आदिकाल से लेकर वर्तमान काल तक भारतीय समाज ने ऐसे सुधारक पैदा किये हैं जिन्होंने समय–समय पर पुरोहितवाद के पाखण्डों से उपजी इन व्यवस्थाओं के खिलाफ खुला विद्रोह किया।

मोहनदास करमचन्द गांधी और डॉ. भीमराव जी अम्बेडकर 20वीं सदी के प्रभावशाली और व्यावहारिक राजनीतिज्ञ थे। उनके विचारों और कार्यों का प्रभाव समाज पर स्पष्टतः परिलक्षित हुआ, जिसे वर्तमान समय में भी महसूस किया जा सकता है। सामाजिक–आर्थिक न्याय की दिशा में लगभग समान लक्ष्य

होने के बावजूद गांधी और अम्बेड़कर के रास्ते अलग–अलग कारक रहे। सामाजिक–आर्थिक न्याय के साध्य की प्राप्ति के लिए लगभग समानता होने के बावजूद भी गांधी और अम्बेड़कर के साधनों, तरीकों एवं विचारों में आधारभूत एवं व्यापक अन्तर प्रतीत होता है।

मधु लिमये का मत है कि ''उनके व्यक्तित्वों की विषमता संघर्ष का मूल कारण नहीं था। जन्म और पालन–पोषण की परिस्थितियों की भिन्नता इसका मुख्य कारण था साथ ही उनके दृष्टिकोणों में बड़ा अन्तर था। विचारों की दृष्टि से दोनों में जमीन–आसमान का अन्तर था।''[1]

इस दृष्टिकोण से विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि गांधी और अम्बेड़कर के जन्म की परिस्थितियाँ निश्चित तौर पर भिन्न थी। दोनों की उम्र में केवल 22 वर्ष का अन्तर था और इस अन्तर का कोई फर्क उनके चिन्तन की भिन्नता का कारण रहा हो, ऐसा प्रतीत नहीं होता। दोनों के जन्म की परिस्थितियां अवश्य ही भिन्नता का कारण प्रतीत होती हैं।

गांधी एक सवर्ण, परम्परागत धार्मिक परिवार में जन्मे थे और अम्बेड़कर एक सामाजिक अपमानग्रस्त दलित परिवार में, जिस परिवार ने कबीर पंथ स्वीकार कर लिया था। इस दृष्टि से गांधी के जीवन पर हिन्दू धार्मिक परम्पराओं का विशेष प्रभाव पड़ा जबकि अम्बेड़कर के जीवन को कबीर पंथ के विद्रोही स्वरूप ने प्रभावित किया।

अस्पृश्यता का पुरजोर विरोध करके भी गांधी ने जिस वर्ण–व्यवस्था के प्रारूप को स्वीकार किया, वह जन्म पर आधारित होने के कारण अनुदारवादी तथा अस्पष्ट प्रतीत होता है। गांधी द्वाा प्रस्तावित वर्णन्व्यवस्था के प्रारूप में सुधारवाद तो झलकता है, लेकिन परिवर्तनवाद नहीं। अम्बेड़कर हिन्दू समाज–व्यवस्था में अमूल परिवर्तन के पक्षधर थे। अम्बेडकर जाति एवं वर्णव्यवस्था, दोनों का उन्मूलन करना चाहते थे। इस प्रकार एक सुधारवादी और एक परिवर्तनवादी दृष्टिकोणों के बीच का अन्तर भी दोनों की सहभागिता के मार्ग में बाधक रहा।

गांधी के सामाजिक–आर्थिक दर्शन का लक्ष्य था– 'सर्वोदय समाज' की स्थापना।[2] अतः गांधी सभी वर्गों के सहयोग के आकांक्षी होने के कारण सवर्ण हिन्दुओं की अन्तरात्मा जागने व उनके हृदय परिवर्तन के प्रति आशावादी थे। इन आशाओं के कारण वे सामंजस्यवादी एवं समझौतावादी प्रतीत होते हैं जबकि अम्बेडकर को समझौतावादी होने की कोई आवश्यकता नहीं थी। सामाजिक–आर्थिक न्याय के अपने निश्चित लक्ष्य के लिए उनकी नीति और कार्यक्रम स्पष्ट थे। वे सवर्ण हिन्दुओं की अन्तरात्मा जागने व हृदय–परिवर्तन के प्रति न तो आशान्वित थे और न ही वे दलितोत्थान के कार्यक्रम में सवर्णों की अनुकम्पाओं के आकांक्षी थे। ऐसा प्रतीत होता है कि गांधी के आशावाद एवं अम्बेडकर के संदेहों, दोनों के कार्यक्षेत्र की इकाईयों में अन्तरों, गांधी की समझौत`व सामंजस्यवादी प्रवृतियों तथा अम्बेडकर के स्पष्ट संघर्षोन्मुखी रूझान के बीच अन्तरों ने भी दोनों को एक मंच पर नहीं आने दिया।

रहे, उनके जन्म, उम्र, लालन–पालन, समय और परिस्थितियों में भिन्नता इस अलगाव के मुख्य

गांधी के सपनों का 'रामराज', अर्थात 'ग्रामराज' की अवधारणा के संदर्भ में भी गांधी एवं अम्बेडकर के बीच बुनियादी मत–भिन्नता दिखाई देती है। गांधी की मान्यता थी कि ''यदि गांव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जायेगा, वह भारत नहीं होगा, विश्व में उसका संदेश समाप्त हो जायेगा।[3]

अम्बेड़कर ग्रामराज को भारत के विनाश का कारण मानते थे। उनका विश्वास था कि मूल रूप से गांव ही सामाजिक असमानता, शोषण और अन्याय के केन्द्र हैं। अम्बेड़कर ने संविधान सभा में कहा था कि ''जिन्हें गाँवों के समुदायों को लेकर इतना गर्व है, वे यह नहीं देख रहे हैं कि देश के अहम मुद्दों और देश की नियति में उनका नहीं के बराबर योगदान है''। अम्बेडकर गाँव को एक अमानवीय और घृणा की बुनियाद के आधार पर स्थापित संस्था मानते थे। उन्होंने ग्रामराज को लोकतंत्र का विरोधी बताया और उसे दलितों पर सवर्णों का साम्राज्य निरूपित किया। इसीलिए उन्होंने दलितों को गाँव छोड़कर नगरों में प्रवास की सलाह दी थी।[5]

ग्रामराज के संदर्भ में अम्बेडकर की आलोचना न केवल तत्कालीन वरन वर्तमान परिस्थितियों में भी सार्थक प्रतीत होती है। नागार्जुन का विचार है कि ''भारत के गाँव–गाँव में दक्षिण अफ्रीका है, यहाँ भी कोई नेल्सन मण्डेला पैदा होगा''।[6]

आर्थिक संसाधनों के न्यायपूर्ण वितरण के संदर्भ में भी गांधी और अम्बेडकर के विचारों में मौलिक अन्तर दिखाई देता है जहां गांधी अत्यधिक सद्भावना और आशावाद के चलते प्रन्यास (ट्रस्टीशिप) सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हैं। इस सिद्धान्त के तहत वे धरोहर के संरक्षक के रूप में पूँजीपतियों पर अगाध विश्वास प्रकट करते हैं जबकि अम्बेडकर ने पूँजीपतियों की दया पर निर्भर प्रन्यास (ट्रस्टीशिप) सिद्धान्त के बजाय व्यक्ति को कानूनी प्रत्याभूति प्रदान करने वाले 'राज्य–समाजवाद' के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। इस सिद्धान्त में दया नहीं, वरन व्यक्ति का अधिकार भाव प्रकट होता है।

गांधी एवं अम्बेड़कर के चिन्तन और दृष्टिकोण में भिन्नता और विरोधाभास जरूर है परन्तु इन भिन्नताओं और विरोधाभासों के बावजूद दोनों ही अपने लक्ष्य के प्रति ईमानदार थे, उनके लक्ष्य लगभग समान थे पर रास्ते अलग–अलग हो गये। सामाजिक परिवर्तन की मनोदशा के हिसाब से न तो गांधी की अत्यधिक आशावादी एवं हृदय–परिवर्तन से परिपूर्ण अपेक्षायें अनुचित हैं और न ही अम्बेड़कर की संदेह से परिपूर्ण आशंकायें। यदि गांधी की अपेक्षायें, अम्बेडकर की आशंकाओं का वास्तविक समाधान प्रस्तुत कर पाती तो विवाद एवं मत–भिन्नता की गुंजाइश स्वतः ही समाप्त हो जाती। गांधी का श्रद्धा पर जितना विश्वास था, उतना ही विश्वास अम्बेड़कर का तर्क पर था। आज यह समय की आवश्यकता है कि श्रद्धा को अंधः श्रद्धा व तर्क को कुतर्क में बदलने की प्रवृत्तियों को हतोत्साहित किया जाये।[7]

अध्ययन का उद्देश्य

उक्त शोधपत्र को लिखने का आशय यह है कि वर्षों से गांधी और अम्बेडकर के दर्शन को परस्पर प्रतिगामी और प्रतिकूल बताये जाने के प्रयास किये जाते रहे हैं। शोधार्थी के मतानुसार दोनों का दर्शन परस्पर प्रतिगामी न होकर उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये पूरक है। इसी आधार पर उनके मातें के अन्तर को निरन्तन बनाये रखने का प्रयास नहीं किया जाना चाहिये वरन् 'समग्रता' में इसका अध्ययन किया जाना चाहिये।

निष्कर्ष

सामाजिक–आर्थिक न्याय के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए यह नितान्त आवश्यक है कि 'गांधीवाद' एवं 'अम्बेडकरवाद' जैसे प्रतीकों के माध्यम से न तो इनका राजनीतिक संस्थाईकरण किया जाये, और न ही इसे परस्पर प्रतिगामी साबित करने की होड़ शुरू की जाए। गांधी एवं अम्बेड़कर विचार के स्तर पर प्रतिगामी होने के बावजूद कर्म के स्तर पर पूरक हैं, इस जज्बे को आत्मसात किया जाना समय–सापेक्ष एवं सार्थक प्रतीत होता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. *मधु लिमयेः डॉ. अम्बेड़कर एक चिंतन, पृ. 27 सरदार वल्लभ भाई पटेल एज्यूकेशन सोसायटी, नई दिल्ली।*
2. *डॉ. रामगोपाल सिंह : भारतीय दलित समस्यायें एवं समाधान पृ.72, म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।*
3. *जैन एवं फड़ियाः भारतीय शासन एवं राजनीति, पृ. 698 साहित्य भवन, आगरा*
4. *भगवानदास (संक.): डॉ. अम्बेड़कर के विचार, पृ. 81 म.प्र. हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।*
5. *डॉ. रामगोपाल सिंहः पूर्वोक्त, पृ.119*
6. *नागार्जुनः दैनिक आज (5 अप्रैल, 1992) रांची*
7. *डॉ. संदीप सिंह चौहानः भारत में दलित चेतना : गांधी और अम्बेडकर, पृ.92–93, आर.बी.एस.ए. प्रकाशन, जयपुर।*